

हिन्दी हाज़िर है!

टी. विजयेंद्र

हिन्दी को लेकर लिखे गए कई लेख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारत दुर्दशा' नाटक की शैली में 'छाती पीटते' दिखाई देते हैं। यह आलेख हिन्दी साहित्य के प्रति एक सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ लिखा गया है। साहित्यिक हिन्दी का इतिहास अपेक्षाकृत संक्षिप्त है जिसकी शुरुआत 1860 के आसपास ही हुई थी। आधुनिक साहित्यिक हिन्दी का इतिहास तो और भी छोटा है जो प्रेमचन्द की मृत्यु के साथ 1936 के आसपास शुरु हुआ था। इस छोटी-सी अवधि में हिन्दी का एक बड़े क्षेत्र में विस्तार हुआ है और आज का हिन्दी साहित्य, दुनिया की बेहतरीन साहित्यिक परम्पराओं में गिना जाता है।

यह आलेख इस अद्भुत यात्रा को एक विहंगम दृष्टि से देखने की कोशिश करता है। इसे सामान्य पाठक को ध्यान में रखते हुए लिखा गया है।

हिन्दी क्या है?

अगर भाषा की बात करें तो 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। पहले अर्थ में यह हिन्दी भाषी क्षेत्र की लगभग 30

भाषाओं के समूह से जुड़ा है। किशोरीदास वाजपेयी (1898-1981) ने इसे भाषाओं का एक 'गणतंत्र' बताया है और तीन विशेषताओं का उल्लेख किया है - पहली, 'का' प्रत्यय का प्रयोग, जैसे का, की, के, को आदि। दूसरी, भौगोलिक निरन्तरता। तीसरी, देवनागरी लिपि का प्रयोग। हिन्दी भाषी क्षेत्र उत्तर में हिमाचल प्रदेश और उत्तराखण्ड, पूर्व में बिहार और छत्तीसगढ़, पश्चिम और दक्षिण में राजस्थान और मध्य प्रदेश तक फैला हुआ है। एक अन्य अर्थ में, हिन्दी क्षेत्र में पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरी कर्नाटक और तेलंगाना भी शामिल हैं जहाँ हिन्दी अच्छी तरह समझी जाती है। यही वजह है कि इस विस्तृत हिन्दी क्षेत्र में भारत सरकार हिन्दी भाषा में पत्र भेजती है।

'हिन्दी' शब्द, अपने दूसरे अर्थ में, एक विशेष क्षेत्र की एक खास भाषा से जुड़ा है। इस भाषा को 'खड़ी बोली' के रूप में जाना जाता है और इसका स्थानीय क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मेरठ ज़िला है। भाषाई तौर पर देखें तो इसकी व्याकरणिक संरचना उर्दू और दखनी जैसी है। दखनी गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरी

कर्नाटक और तेलंगाना सहित पूरे पश्चिमी भारत में अनेक रूपों में मौजूद है।

इस लेख में हम 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग खड़ी बोली के साहित्यिक रूप के लिए करेंगे। इस हिन्दी को उर्दू की बेटी कहा जाता है और उर्दू को ही दखनी की बेटी कहा जाता है। इसे थोड़ा और विस्तार से समझने की जरूरत है।

दखनी: आधुनिक उर्दू और हिन्दी की जननी

दखनी के मशहूर कवि, वली दखनी (जो वली औरंगाबादी और वली गुजराती के नाम से भी जाने जाते हैं) जब 1700 में दिल्ली आए, तो उन्होंने अपनी गज़लों से दिल्ली के कवियों को हैरान कर दिया। उन्हें फारसी के कवियों से बहुत प्रशंसा मिली। वली को सुनने के बाद, उनमें से कुछ कवियों ने भी लोकभाषा उर्दू को अपनी काव्य अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। प्रसिद्ध कवि शाह हातिम, शाह अब्रो और मीर तकी मीर उनके प्रशंसकों में से थे।

उस समय दिल्ली में दरबारी कवि फारसी और अरबी में रचनाएँ लिख रहे थे। अन्य कवियों के लिए, ब्रज और अवधी साहित्यिक और धार्मिक अभिव्यक्तियों की भाषाएँ थीं। सभी के द्वारा बोली जाने वाली भाषा खड़ी बोली थी। जब कवियों ने वली को दखनी में सुना, तो वे इस बात से



चित्र-1: वली दखनी, या वली मुहम्मद वली, लोकभाषा उर्दू में गज़ल लिखने वाले पहले स्थापित कवि थे।

हैरान थे कि एक लोकभाषा इतनी समृद्ध साहित्यिक अभिव्यक्ति कर सकती है (रेखा में भी इतना अच्छा लिखा जा सकता है!)।

वली दखनी का जन्म महाराष्ट्र के औरंगाबाद में वली मुहम्मद (1667-1731/1743) के नाम से हुआ था। वे गुरु की तलाश में गुजरात गए और वजीहुद्दीन गुजराती के शागिर्द बने। फिर जल्द ही वे मशहूर हो गए। वे वापस आकर औरंगाबाद में बस गए, लेकिन उन्होंने दो बार दिल्ली की यात्रा की। उनकी पहली यात्रा से मिले नाटकीय नतीजों के बारे में ऊपर बताया जा ही चुका है। इसके बाद उन्हें उर्दू कविता के प्रणेता के रूप में जाना जाने लगा। उनकी मृत्यु अहमदाबाद में हुई। गोधरा दंगों के बाद हिन्दू फासीवादियों ने उनकी

कन्न को तोड़ दिया था। वली दखनी ने मसनवी और कसीदों के अलावा 473 गज़लों की रचना की। उनकी गज़लें आज भी कई गायकों द्वारा गाई जाती हैं, जिनमें आबिदा परवीन भी शामिल हैं।

इस तरह, 18वीं शताब्दी की शुरुआत में, वली की यात्रा के बाद उर्दू ने एक साहित्यिक भाषा के रूप में जन्म लिया। आधुनिक हिन्दी (देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली) और उर्दू (फारसी-अरबी या उर्दू लिपि में लिखी जाने वाली), दोनों ही दिल्ली और मेरठ क्षेत्र में बोली जाने वाली खड़ी बोली के रूप हैं। दरबारी हलकों, फारसी और अरबी विद्वानों, और खास तौर पर, दिल्ली के मुसलमानों ने इस भाषा को बहुत चाव से अपनाया। इसके साथ ही, 18वीं शताब्दी बीतते-बीतते मुगल-घराना उर्दूमय हो गया। शुरुआत के करीब 60 वर्षों तक उर्दू पर दखनी कवियों, सूफी सोच और बोलचाल की भारतीयता का प्रभाव बना रहा।

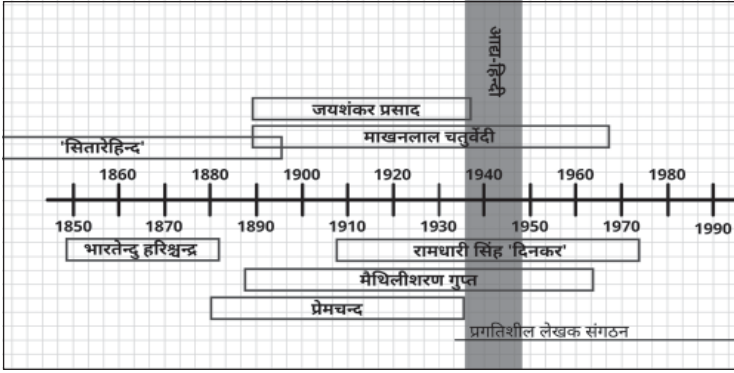
हालाँकि, अमीर खुसरो (1253-1325) और कबीर (1398-1448) ने 14वीं और 15वीं सदी में खड़ी बोली का इस्तेमाल किया, लेकिन 'हिन्दी' 19वीं सदी के उत्तरार्ध में ही साहित्यिक भाषा बनी। उस समय तक लेखक ज़्यादातर ब्रज और अवधी में लिख रहे थे। ये राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द' (1824-1895) और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1849-1882)

ही थे जिन्होंने पहली बार खड़ी बोली को देवनागरी लिपि में लिखना शुरु किया। वे उर्दू की लोकप्रियता से काफी प्रभावित थे, जो फारसी-अरबी या उर्दू लिपि में लिखी गई थी। शुरुआत में, अन्तर मुख्य रूप से लिपि में था और दोनों लेखक दोनों ही लिपियों को जानते थे। प्रसिद्ध हिन्दी लेखक प्रेमचन्द (1880-1936) ने भी शुरुआत में, नवाबराय के नाम से, उर्दू में ही लिखा। इस तरह, आधुनिक हिन्दी महज़ 150 साल पुरानी है, और उर्दू की तरह दखनी से प्रेरित है।

केरल के 20वीं सदी के हिन्दी विद्वान डॉ. वी.पी. मुहम्मद कुंज मेट्टार (1946-) ने आधुनिक हिन्दी के स्रोत के रूप में दखनी को स्थापित किया। डॉ. सुनीति कुमार चट्टोपाध्याय (1890-1977) ने भी व्यक्त किया है कि यह दखनी ही थी जिसने उत्तर में ब्रज की जगह खड़ी बोली के इस्तेमाल की शुरुआत की। बल्कि, इस भाषा के लिए 'हिन्दी' नाम की उत्पत्ति भी दक्षिण में हुई है। 17वीं शताब्दी में एक तमिल कवि, काज़ी मुहम्मद बहारी ने अपने सूफी काव्य संग्रह 'मन लगन' में दखनी के लिए 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया था।²

उर्दू-हिन्दी का सिलसिला 1860-1936

साहित्य के इतिहास को देखें तो उसे निश्चित अवधियों में बाँटना



चित्र-2

हमेशा ही थोड़ा पेचीदा होता है। जहाँ कुछ नया पैदा हो रहा होता है, वहीं पुराना भी बहुत लम्बे समय तक बना रहता है। कई लेखक, खासकर गद्य लेखक वृद्धावस्था में परिपक्व होते हैं। इसलिए उल्लेख किए गए वर्षों को केवल सांकेतिक रूप में लिया जाना चाहिए।

इस दरमियान, साहित्य की विषय-वस्तु रूसी क्रान्ति, 1929 की वैश्विक मन्दी के दौरान उपजे श्रमिक आन्दोलन और अनूदित रूसी साहित्य (टॉल्स्टॉय, गोर्की, चेखव) की उपलब्धता के प्रभाव में आकर, देशभक्ति के स्वर से 'प्रगतिशील लेखक संगठन' में बदलती चली गई। प्रेमचन्द यकीनन इस समय के महान लेखक थे।

एक तरफ तो ये बड़े बदलाव हो रहे थे, वहीं दूसरी तरफ उर्दू स्रोतों से 'किस्सा हातिमताई' की तर्ज़ पर एक अन्य शृंखला के ज़रिए हिन्दी का एक बड़ा पाठक-वर्ग तैयार हो रहा

था। यह देवकीनन्दन खत्री (1861-1913) के हिन्दू राजा-रानियों और जादूगरों से भरे उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के ज़रिए हुआ।

देवनागरी में हिन्दी की लड़ाई राजनीतिक अखाड़ों में भी लड़ी गई, ताकि हिन्दुओं के लिए उन अदालतों में नौकरियाँ पैदा की जा सकें जहाँ मुसलमानों का वर्चस्व था, क्योंकि अदालतों में उर्दू लिपि का इस्तेमाल होता था। वीर भरत तलवार (1947-) ने अपनी किताब 'रस्साकशी' में इस बारे में लिखा है।¹⁹

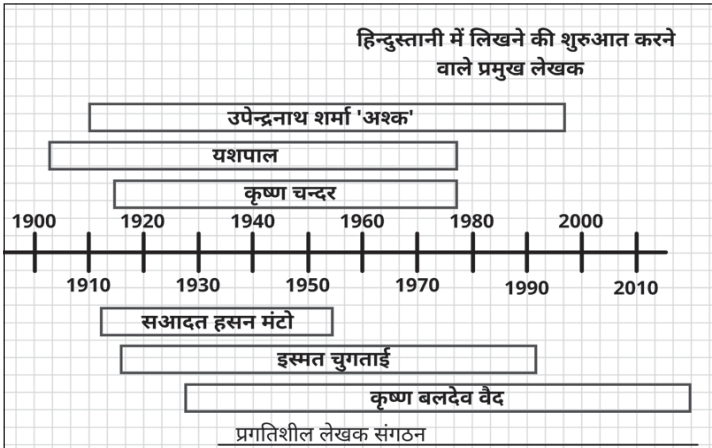
आद्य-हिन्दी, 1936-1947

हिन्दी/देवनागरी की लड़ाई तो जीत ली गई, लेकिन जो हिन्दी सामने आई, वह कुछ बनावटी लग रही थी। इसके प्रमुख लेखक पटना में रामधारी सिंह 'दिनकर' (1908-1974), खण्डवा में माखनलाल चतुर्वेदी (1889-1968), चिरगाँव,

झाँसी में मैथिली शरण गुप्त (1886-1964) और बनारस में जयशंकर प्रसाद (1889-1937) थे। स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल, माखनलाल चतुर्वेदी की प्रसिद्ध कविता 'पुष्प की अभिलाषा' शायद इस आद्य-हिन्दी का सबसे लोकप्रिय उदाहरण है। ये लेखक प्रतिभाशाली थे, और बंगाल के लेखन से प्रभावित थे, लेकिन यह भाषा अभी भी बहुत अपरिपक्व थी।

इन प्रतिभाशाली लेखकों द्वारा ऐसी कृत्रिम भाषा का निर्माण करने के कई कारण हैं। एक साहित्यिक भाषा की समृद्धि, लोकभाषा के साथ उसके सम्पर्क और उसकी परम्परा से आती है। ऐतिहासिक कारणों से, इन लेखकों ने उर्दू साहित्य की परम्परा से कटने का फैसला किया। नई हिन्दी के ये केन्द्र, खड़ी बोली के क्षेत्र के बाहर थे — भोजपुर/मगही में दिनकर, निमाड़ में माखनलाल

चतुर्वेदी और बुन्देलखण्ड में मैथिली शरण गुप्त। उनके लिए खड़ी बोली की यह परम्परा सुलभ नहीं थी जो पश्चिमी भारत के निर्गुण सन्तों के साथ यात्रा करके अन्ततः साहित्यिक दखनी में विकसित हुई थी। हिन्दी क्षेत्र में इस परम्परा को तुच्छ समझा जाता था, लेकिन आचार्य क्षितिमोहन सेन (1880-1960) ने अपनी मौलिक पुस्तक 'मध्य युगेर साधना' के माध्यम से इसके महत्व को स्थापित किया। शान्तिनिकेतन में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी (1907-1979) ने, जो सेन को अपना गुरु मानते थे, इसके बारे में जाना और बनारस में हिन्दी भाषी क्षेत्र में कबीर को उनका स्थान दिलाने की कोशिश की। उन्होंने कबीर पर एक बेहतरीन किताब भी लिखी, लेकिन उसका स्वागत किए जाने की बजाय उन्हें बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया।



चित्र-3

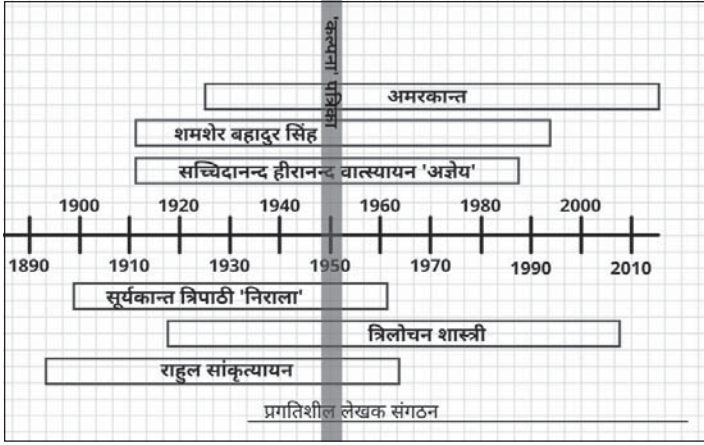
इस वजह से उर्दू-हिन्दी का यह सिलसिला लम्बे समय से कायम है। आज भी 'हिन्दुस्तानी' के समर्थक मौजूद हैं, और मुम्बई से प्रकाशित होने वाली एक पत्रिका इसी के लिए समर्पित है। यह परम्परा मुख्य रूप से पंजाब क्षेत्र के लेखकों के एक समूह द्वारा शुरू की गई थी, जो विभाजन और लैंगिकता जैसे विषयों को लेकर लिख रहे थे। इनमें सआदत हसन मंटो (1912-1955), कृष्ण चन्दर (1914-1977), इस्मत चुगताई (1915-1991), यशपाल (1903-1976) और उपेन्द्रनाथ शर्मा 'अश्क' (1910-1996) शामिल थे। पहले तीन लेखकों को उर्दू लेखक भी माना जाता है जिनकी रचनाएँ दोनों लिपियों में बड़े पैमाने पर प्रकाशित होती हैं। इस शैली में एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक कृष्ण बलदेव वैद (1927-2020) थे, खास तौर पर उनकी कृति 'गुजरा हुआ ज़माना'।

लोकप्रिय स्तर पर, 70 के दशक तक रंगमंच और बॉलीवुड उर्दू-हिन्दी के सिलसिले की इस परम्परा में बने रहे। इब्ने सफी (1928-1980) की अपराध कहानियाँ 'जासूसी दुनिया' नाम की एक श्रृंखला के रूप में हिन्दी और उर्दू, दोनों में प्रकाशित हुईं। पंजाबी मज़दूर वर्ग से आए एक कम्युनिस्ट, ओमप्रकाश शर्मा (1924-1998) क्राइम/थ्रिलर शैली के एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक थे। उनकी किताबों में भारतीय गुप्तचर सेवा और

के.जी.बी. साथ मिलकर सी.आई.ए. की योजनाओं को विफल करने के लिए काम करते हैं! शीत युद्ध के दौरान यह काफी क्रान्तिकारी भी था, क्योंकि तब पश्चिमी थ्रिलर किताबें कम्युनिज़्म से होने वाले खतरे को वीभत्स रूप से दर्शा रही थीं। उन्होंने एक बहुत ही पठनीय आत्मकथा भी लिखी जो उनके समय और साहित्य में प्रचलित प्रवृत्तियों के बारे में कई विवरण देती है। मज़दूर वर्ग से आए एक अन्य कम्युनिस्ट शिव नारायण श्रीवास्तव (1900-1980) थे, जो मुम्बई और इन्दौर में कपड़ा मज़दूर रहे थे। 'भारत का गोर्की' के नाम से मशहूर इस लेखक की सबसे मशहूर किताब 'धुन, आग और इन्सान' है। 'शमा' जैसी कई लोकप्रिय पत्रिकाएँ दोनों लिपियों में प्रकाशित होती रही हैं।

आधुनिक हिन्दी

हिन्दी के जिस परिपक्व रूप को आज हम जानते हैं, उसकी शुरुआत तीन महत्वपूर्ण कवियों ने की थी – निराला (सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'; 1899-1961), त्रिलोचन शास्त्री (1917-2007) और शमशेर (शमशेर बहादुर सिंह; 1911-1993)। अज्ञेय (सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन; 1911-1987) एक बहुआयामी लेखक थे और इस काल को परिभाषित करने वाली महत्वपूर्ण उपस्थिति थे। वे कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार, सम्पादक और एक बेहतरीन



चित्र-4: आधुनिक हिन्दी की शुरुआत करने वाले प्रमुख लेखक।

अनुवादक थे। कहानी विधा में शायद सबसे श्रेष्ठ लेखक अमरकान्त (1925-2014) थे। इन लेखकों की रचनाएँ प्रकाशित करने में हैदराबाद की साहित्यिक पत्रिका 'कल्पना' ने अहम भूमिका निभाई।

राहुल सांकृत्यायन (1893-1963) इस अवधि के एक अनूठे लेखक थे। इस बहुज्ञ और बहुभाषाविद् ने समाजशास्त्र, इतिहास, भारतविद्या, दर्शनशास्त्र, बौद्ध धर्म, तिब्बत अध्ययन, कोशविज्ञान, व्याकरण, पाठकीय सम्पादन, लोक-साहित्य, विज्ञान, नाटक और राजनीति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे एक यात्री, संस्कृत एवं पाली के विद्वान, वामपन्थी कार्यकर्ता और आखिरकार एक बौद्ध थे। उन्होंने यात्रा वृत्तान्त, वामपन्थी कथा साहित्य (वोल्गा से

गंगा), मज़दूर वर्ग के लिए लेखन (भागो नहीं दुनिया को बदलो), जीवनियाँ (मार्क्स और माओ पर), यात्रा पर एक ग्रंथ (घुमक्कड़ शास्त्र), विज्ञान गल्प और यूटोपियन (आदर्शलोकीय) लेखन, इस्लाम, बौद्ध धर्म और विश्व दर्शन पर केन्द्रित किताबों सहित, हिन्दी में लगभग 100 किताबें लिखीं। उनकी रचनाओं का भारतीय और विदेशी भाषाओं में बड़ी संख्या में अनुवाद हुआ और उन्होंने कई लेखकों और हज़ारों पाठकों को प्रभावित और प्रेरित किया।

हिन्दी की इस पुनरावृत्ति को विकसित करने में अनुवादों ने एक बड़ी भूमिका निभाई। पहले बांग्ला से अनुवाद हुए। 'माया' और 'मनोहर कहानियाँ' जैसी पत्रिकाएँ बांग्ला से अनूदित रचनाओं को नियमित रूप से

प्रकाशित करती थीं। शरतचन्द्र चटर्जी, बंकिमचन्द्र चटर्जी और रवींद्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का बड़े पैमाने पर अनुवाद किया गया। कई हिन्दी लेखक बांग्ला अच्छी तरह जानते थे; वहीं पटना, बनारस, इलाहाबाद और आगरा में रहने वाले कई बंगाली लेखक हिन्दी अच्छी तरह जानते थे। इसने हिन्दी भाषा को आश्रय लेने के लिए एक वृहद परम्परा प्रदान की।

अंग्रेज़ी से अनुवाद हिन्दी के संवर्द्धन का दूसरा स्रोत था, और अंग्रेज़ी के माध्यम से फ्रेंच, जर्मन और रूसी साहित्यिक परम्पराओं तक इसकी पहुँच भी बढ़ी। चीनी साहित्य के मामले में भी इस तरह के अनुवादों ने बड़ी भूमिका निभाई। यहाँ गोर्की के अनुवादों का विशेष तौर पर उल्लेख करने की ज़रूरत है। चूँकि गोर्की की पृष्ठभूमि मज़दूर वर्ग की थी इसलिए अनुवादकों को भारतीय मज़दूर वर्ग से वैसी ही भाषा और मुहावरों को तलाशना पड़ा।

हिन्दी क्षेत्र की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभाव ने भी निश्चित रूप से एक अहम भूमिका निभाई। इसके सबसे प्रभावशाली लेखक मिथिला क्षेत्र के फणीश्वर नाथ 'रेणु' (1921-1977) थे। 'उसने कहा था' में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' (1883-1922) और 'एक चादर मैली सी' में राजिन्दर सिंह बेदी (1915-1984) ने पंजाबी का बहुत खूबसूरती से इस्तेमाल किया।

मनमोहन पाठक ने अपने उपन्यास 'गगन घटा घरानी' में झारखण्ड हिन्दी का इस्तेमाल भी बहुत काव्यात्मक ढंग से किया है। विजयदान देथा (1926-2013) ने राजस्थानी लोककथाओं की संवेदना को हिन्दी में अभिव्यक्त किया। उनका लिखा लोकसाहित्य 'बातां री फुलवारी' के नाम से कई खण्डों में प्रकाशित हुआ, साथ ही उन्होंने आधुनिक हिन्दी में लोक पर आधारित लघुकथाएँ भी लिखीं। उन्होंने लोककथाओं में आधुनिक संवेदनशीलता को तलाशा। मनोहर श्याम जोशी (1933-2006) कुमाऊँनी अनुभूतियों को हिन्दी में लेकर आए। लेकिन इससे भी बढ़कर, उन्होंने आधुनिकता, कल्पना और जादुई यथार्थवाद का प्रयोग बड़ी सहजता के साथ किया।

1960 और 70 के दशक के उत्तरार्द्ध की प्रचण्ड लहर ने हिन्दी में वाम-प्रभावित साहित्य की एक नई परम्परा शुरू की। इसमें प्रमुख थे उग्र युवा कवि, सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' (1936-1975), काशीनाथ सिंह (1937), जिन्होंने 'अपना मोर्चा' से ख्याति प्राप्त की, और कवि आलोकधन्वा ('गोली दागो पोस्टर', 'घर से भागी हुई लड़कियाँ')।

लोकप्रिय साहित्य, समाचार पत्रों (नवभारत टाइम्स, हिन्दुस्तान, नई दुनिया और राजस्थान पत्रिका) तथा पत्रिकाओं (धर्मयुग, सारिका, सरिता,

माया, मनोहर कहानियाँ और दिनमान) ने भी इसमें एक बड़ी भूमिका निभाई। गुलशन नन्दा (1929-1985) एक प्रमुख बेस्टसेलर लेखक के रूप में उभरे। अपराध की कहानियाँ बड़ी तादाद में लिखी जाने लगीं और सुरेन्द्र मोहन पाठक (1940-) जैसे कई नए लेखकों ने भी बड़ी संख्या में अपने अनुयायी तैयार किए।

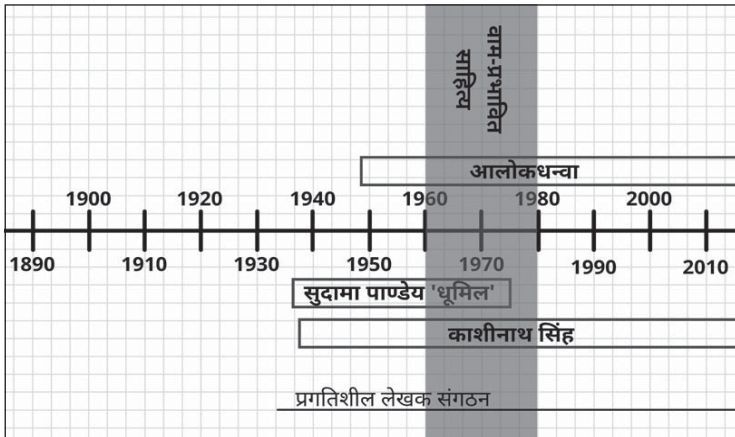
अन्त में, स्वतंत्रता के बाद, टॉल्स्टॉय ने जिसे 'मँझला साहित्य' कहा था, उसका एक विस्फोट हुआ (यानी न तो महान, न ही लुगदी बल्कि परिष्कृत भाषा में काफी पठनीय साहित्य लिखा गया)। हिंद पॉकेट बुक्स, राजकमल और राजपाल ने पेपरबैक के रूप में सस्ती किताबें प्रकाशित कीं और एक बड़ा, नया पाठक वर्ग बनाया। इस युग में हरिवंश राय 'बच्चन' (कविता और गद्य, दोनों में), शिवानी, वृन्दावन लाल वर्मा,

जैनेन्द्र, भीष्म साहनी, धर्मवीर भारती, दुष्यन्त कुमार, कमलेश्वर जैसे कई महत्वपूर्ण लेखक हुए। यह याद रखना चाहिए कि मँझले और महान साहित्य के बीच कोई स्पष्ट सीमा रेखा नहीं है। कई बेहतरीन लेखकों ने मँझला साहित्य लिखा है।

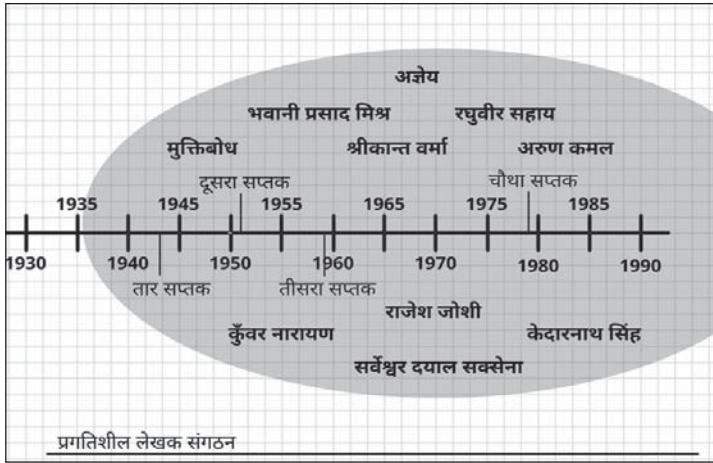
आधुनिक संवेदनशीलता के साथ आधुनिक हिन्दी

हिन्दी साहित्य की आधुनिक संवेदनशीलता में अतीत के वर्ग-जाति मुद्दों के साथ-साथ नारीवादी और दलित मुद्दे भी शामिल हैं। इसमें पुराने रूपों से अलग होना भी शामिल हो सकता है जिसे साहित्य की उत्तर-मार्केज़ियन दुनिया कहा जाता है।

कविता में यह 'तार सप्तक' 1 और 2 (1943) के साथ शुरू हुआ, जिसमें गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-1964) इस अनुभूति के सबसे



चित्र-5



चित्र-6: 1943 से 1979 के बीच चार सप्तक प्रकाशित किए गए थे। चारों सप्तकों के कुछ प्रमुख कवियों के नाम (किसी विशेष क्रम में नहीं) अण्डाकार घरे में प्रस्तुत हैं।

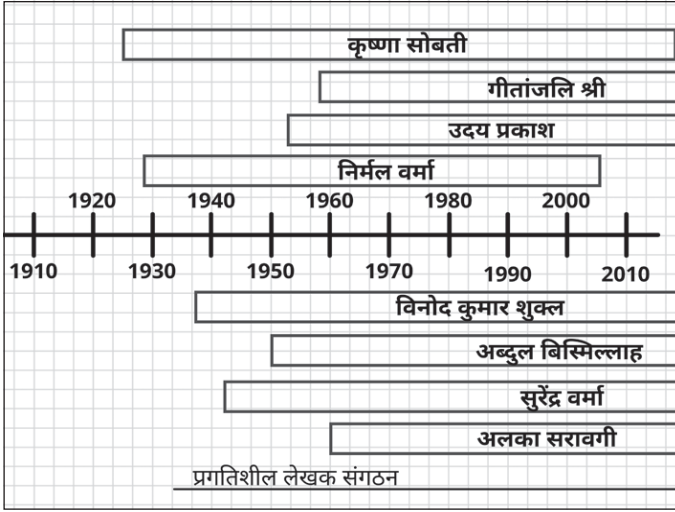
महत्वपूर्ण कवियों में से एक के रूप में उभरे। इन सप्तकों का सम्पादन अज्ञेय ने किया था और अब तक कुल चार सप्तक प्रकाशित हुए हैं। इस परम्परा के कुछ महत्वपूर्ण कवि हैं अज्ञेय, भवानी प्रसाद मिश्र (1913-1985), रघुवीर सहाय (1929-1990), सर्वेश्वर दयाल सक्सेना (1927-1983), केदारनाथ सिंह (1934-2018), श्रीकान्त वर्मा (1931-1986), कुँवर नारायण (1927-2017), राजेश जोशी (1946-) और अरुण कमल (1954-)।

गद्य में, शायद निर्मल वर्मा (1929-2005) ही हैं जिन्होंने इस आधुनिक संवेदनशीलता को चिह्नित किया है। इससे बेहद प्रतिभाशाली लेखकों की एक नई पीढ़ी के लिए रास्ता खुल गया। उदाहरण के लिए, यहाँ हमारे

पास विनोद कुमार शुक्ल (1937-), उदय प्रकाश (1952-), संजय, अब्दुल बिस्मिल्लाह (1949-), सुरेन्द्र वर्मा (1941-), गीतांजलि श्री (1957-), कृष्णा सोबती (1925-2019) और अलका सरावगी (1960-) जैसे लेखक हैं। अलका सरावगी के साथ 21वीं सदी शुरू होती है जहाँ हमारे पास एक बिलकुल अलग अनुभूति और रूप में एक क्रांतिकारी रवानगी है। यानी हिन्दी सचमुच हाज़िर हो गई है!

कुछ चुनौतियाँ

हिन्दी की लोकप्रियता और प्रसार से कुछ समस्याएँ पैदा हुई हैं। भाषा की दृष्टि से आलोचना की जाती है कि यह हिन्दी किसी विद्यार्थी या



चित्र-7: आधुनिक संवेदनशीलता के प्रमुख लेखक।

रिक्शाचालक की समझ से बाहर की है। हिन्दुस्तानी के लिए फिर हो-हल्ला होने लगता है। अँग्रेजी के प्रभाव को लेकर आशंकाएँ अपनी जगह हैं ही।

शायद सबसे बड़ी समस्या इस धारणा का होना है कि हिन्दी संस्कृत की बेटा है। हालाँकि, पिछले 50 वर्षों में विद्वानों ने इस मान्यता को पूरी तरह से खारिज कर दिया है, लेकिन इसकी पैठ इतनी गहरी हो चुकी है कि हिन्दी के लेखक आज भी इससे प्रभावित हैं। ऐसा नहीं है कि वे इस समस्या से अनजान हैं, लेकिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रघुवीर के शब्दकोष द्वारा रखी गई नींव के साथ

हिन्दी की संरचना में यह धारणा घुल-सी गई है।

व्याकरण के स्तर पर संस्कृत समास और सन्धि ने तो गज़ब ही ढाया है। सन्धि का प्रयोग करते हुए प्रत्यय को मुख्य शब्द से जोड़ना हिन्दी के स्वभाव में नहीं है। शब्दावली को लेकर, कई लेखक 'शुद्ध हिन्दी' की धारणा पर कायम हैं। वे 'तत्सम' (अर्थात् संस्कृत मूल के) शब्दों का उपयोग करते हैं, जिनमें से कुछ का उच्चारण हिन्दी-भाषी दुनिया के अधिकांश लोग नहीं कर पाते। किसी भी भाषा में विदेशी (संस्कृत सहित) शब्दों को आत्मसात करने का एक सीधा-सा नियम है – यदि शब्द भाषा के स्वभाव के अनुरूप है तो वह

आत्मसात हो जाएगा, अन्यथा इसे संशोधित कर सम्मिलित किया जा सकता है, खासकर अगर भाषा में उसके समकक्ष कोई अवधारणा मौजूद न हो। संस्कृत, फारसी और अँग्रेज़ी के ऐसे अनेक शब्द हिन्दी में आत्मसात किए गए हैं। अगर किसी तत्सम शब्द का उपयोग करना ज़रूरी हो, तो उसे इटैलिक में लिखा जाना चाहिए जैसा कि अँग्रेज़ी में लैटिन शब्दों के साथ किया जाता है।⁶

अँग्रेज़ी का प्रभाव दूरगामी है और

कुछ लोगों को डर है कि यह भारतीय साहित्य के लिए खतरे की घण्टी है। इनमें से कुछ डर अपनी जगह सही भी लगते हैं जिनके बारे में केवल समय ही बता सकता है। लेकिन इसमें कुछ ऐसा है जिसे लेकर हिन्दी के लेखक कुछ कर सकते हैं। एक रूसी भाषाविद् के अनुसार,⁶ “‘शुद्धतावादी प्रवृत्ति’ अँग्रेज़ी की प्रतिधारणा को प्रोत्साहित करती है।” सीधे शब्दों में कहें, तो शुद्धतावादी प्रवृत्ति हिन्दी को अँग्रेज़ी की तुलना में मुश्किल बनाती है।

टी. विजयेंद्र: मैसूर में जन्मे, इन्दौर में पले-बढ़े और 1966 में आई.आई.टी., खड़गपुर से बी.टेक. किया। कोलकाता के साहा इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूक्लियर फिज़िक्स में एक साल काम करने के बाद, 70 के दशक के अन्तिम वर्षों के उहापोह भरे दौर से प्रभावित हुए। तब से, वे हमेशा किसी-न-किसी तरह से राजनीतिक-सामाजिक रूप में सक्रिय रहे हैं। वे ‘पीक ऑयल’ के क्षेत्र में सक्रिय हैं और पीक ऑयल इंडिया और इकोलॉजाइस के संस्थापक सदस्य हैं। वे अपना समय कभी पश्चिमी घाट की तलहटी में स्थित एक जैविक खेत पर, कभी पक्षियों को निहारते हुए, कभी कथा लेखन करते हुए, तो कभी हैदराबाद में रहकर बिताते हैं। उन्होंने संसाधनों की कमी को लेकर एक किताब, निबन्धों की तीन किताबें, दो कहानी संग्रह, एक उपन्यास और एक आत्मकथा लिखे हैं। **ईमेल:** t.vijayendra@gmail.com

अँग्रेज़ी से अनुवाद: अमेय कांत: इलेक्ट्रॉनिक्स इंजीनियरिंग में स्नातकोत्तर, अनुवाद में डिप्लोमा। लगभग दस वर्षों तक इंजीनियरिंग कॉलेजों में अध्यापन के बाद, पिछले कुछ वर्षों से फ्रीलांस अनुवाद कर रहे हैं। कविता संग्रह ‘समुद्र से लौटेंगे रेत के घर’ 2016 में अंतिका प्रकाशन से प्रकाशित। फोटोग्राफी और संगीत में रुचि।

यह लेख Countercurrents.org से साभार।

सन्दर्भ:

1. Bajpai, Kishoridas: Hindi Shabdanushasan, Varanasi v.s. 2013, Nagari Pracharini Sabha
2. T. Vijayendra: Dakhni: The language in which the Composite Culture of India was born, 2009, in ‘The Losers Shall Inherit the World’, 2009, Sangatya Sahitya Bhandar, Nakre, Karkala, Udupi
3. Talwar, Vir Bharat: Rassakashii, 2002, New Delhi, Saransh Prakashan Pvt. Ltd.
4. T. Vijayendra: Sanskrit and Indian Language Family, 2015, in ‘Requiem for Our Times’, Sangatya Sahitya Bhandar, Nakre, Karkala, Udupi
5. Dharamveer: Hindi Ki Atma, 1987, New Delhi, Samata Prakashan
6. Boris I Kluyev: India: National and Language Problem, Sterling Publications Pvt. Ltd. New Delhi